श्रीशान्तिलाल भारद्वाज 'राकेश'

मेवाड़ में रचित जैन साहित्य

धर्म-दर्शन और साहित्य

लोक-कल्याण और साहित्य—लोक-कल्याण जहां साहित्य की सार्थकता का एक विशिष्ट मानदण्ड है वहां जैन-साहित्य महती प्रतिष्ठा का अधिकारी है. जैन-धर्म दया, सत्य, अहिंसा और त्याग जैसी धर्म की शाश्वत मान्यताओं का जितना प्रतिष्ठापक रहा है, लोकजीवन में स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था का भी वह उतना ही महान् मार्गदर्शक रहा. जैन सन्तों ने, जो सामाजिक जीवन में घुलकर भी असंपृक्त रहे, एक ओर धर्म को तथा दूसरी ओर साहित्य को जो अपनी देन दी है, भारतीय चेतना को, इतिहास को, उसका ऋणी रहना पड़ेगा.

धर्म और काव्य—धर्म, दर्शन, काव्य या साहित्य, समाज, तर्क और मनोविज्ञान—देखा जाय तो मानव की विचार-चेतना के यह विभिन्न पृष्ठ एक दूसरे से इतने असम्बद्ध नहीं हैं जितने दिखाई देते हैं. धर्म का जिस क्षण जन्म है—काव्य का जन्म भी उसी क्षण है. धर्म का अर्थ जब चोचलेबाजी बन गया तब कथित धार्मिकता ने भी काव्य को विकृत किया लेकिन निष्कर्ष फिर भी यह नहीं निकल सकता कि धर्म और काव्य में कोई सामञ्जस्य नहीं.

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी 'काव्य पर धार्मिक प्रभाव' के सम्बन्ध में इन भयंकर परिणामों की चेतावनी दी थी कि धर्म को काव्य से बहिष्कृत करने का अर्थ हिन्दी के लिए तुलसी और सूर जैसे कवियों के उत्तराधिकार से वंचित रह जाना होगा. और यह सत्य भी है कि हमारा काव्य और हमारा धर्म दोनों का प्रवाह हमें एक ही उद्गम से प्रकट दिखाई देता है.

एक—धर्म की व्यवस्था होती है. दूसरा—धार्मिक प्रभाव का काव्य होता है. इनमें भेद होता है; अन्यथा भेद होना चाहिये. काव्य के क्षेत्र में धर्म को भी मर्यादित होना पड़ता है क्योंकि काव्य के लिए रसज्ञता का निर्वाह प्रतिक्षण आवश्यक है. हाँ—जहाँ धर्म काव्य को अपना आवरण ही मानकर चले वहाँ थोथी उपदेशात्मकता काव्य-धर्म-श्रोता या पाठक—सभी के लिए भारी पड़ती है. काव्यसृजन भी सफल तभी होता है जब वह सृष्टा का धर्म बन जाय.

समर्थ परम्परा—जैन-साहित्य एक लम्बी और समर्थ परम्परा का इतिहास संभालते हुए भी साहित्यालोचकों के एक विशिष्ट वर्ग की उपेक्षा का पात्र रहा है. इसके कई कारण समझ में आते हैं.

उपेक्षा के कारण—एक तो जैन सन्तों का, भाषा की रूढ़ मर्यादाओं में बंधे रहकर, जनभाषा के परिवर्तित स्वरूपों को अंगीकार करते चले जाना. वैष्णव धर्म की परम्परा में संस्कृत-ग्रंथ और जैन-धर्म की परम्परा में प्राकृत और अपभ्रंश—फिर वह युग भी धर्माधीशों के शास्त्रार्थ का—इसलिए सम्भव यह लगता है कि राज्याश्रय भोगने वाले पण्डित चाहे चौरासी आसनों की ही कसरत में लगे रहे हों, लेकिन उन्होंने इतर भाषाओं में रचित जैन साहित्य को प्रतिष्ठा नहीं दी होगी. दूसरा कारण यह भी कि धीरे-धीरे जैनधर्म भी अपने संकोच-धर्म का पालन करने लगा था.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थिति ऐसी भी आई कि जैन मंदिर-साहित्य-जैनाचार्य और श्रावक, बस इसी दुनिया में यह धार्मिक आन्दोलन चलता रहा और धीरे-धीरे जन-जीवन से हटकर जैन-साहित्य एक दिन अनुसन्धान की वस्तु बन गया.

चेतना का साहित्य—किस धर्म के संतों की परम्परा साहित्य-सृजन से इतनी बंधी रही है ? परलोक होता हो चाहे न होता हो, इहलोक के कल्याण के लिए भी वे निरन्तर साहित्य का अमृत पिलाते रहे और विष के आकर्षण में न फंसने की सदैव चेतावनी देते रहे.

भाषा के माध्यम का यह प्रगतिशील दृष्टिकोण धार्मिक सिद्धान्तों की प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से भी सार्थक रहा, उसने युग यथार्थ के इतिहास के साथ भी न्याय किया और सिद्धान्तरूप में उसने स्वयं अपने भीतर विकास की भी प्रबल सम्भावना छोड़ी. इसीलिए आज का एक दिन ऐसा भी आया जहां जैन साहित्य अपना सर्वस्व स्थापित कर चुका है.

जायसी और स्वयंभू—आज हिन्दी साहित्य की परम्परा का इतिहास खोजने जाते हैं तो प्राकृत अपभ्रंश के युगों में जैन साहित्य का गौरव ही हमारा हाथ थामता है और तब यह प्रश्न उठता है कि सूफी जायसी जब हमारे लिए पठनीय हो सकता है तो जैन स्वयंभू हमारे लिए पठनीय क्यों नहीं हो सकता ?

धार्मिक प्रतिस्पर्धा की जड़ें दिनोंदिन सूखती जा रही हैं और जैन-साहित्य के विशद अनुसंधान की प्रवृत्ति आज तो एक आन्दोलन का रूप ले चुकी है.

अध्यात्मलक्षी दर्शन—भारतीय दर्शन अध्यात्मलक्षी है. इसमें पश्चिम के दर्शन की भाँति बुद्धि को प्रधानता नहीं दी गई है. यहाँ आत्मतत्त्व की शुद्धि प्रधान है, और भारतीय दर्शन का यही मूल संस्कार भारतीय धर्म और समाज की व्यवस्थाओं को प्रतिक्षण प्रभावित करता रहा है.

श्रद्धा-ज्ञान और क्रिया को जैनशास्त्रों में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र के नाम से जाना गया है लेकिन साधना के सोपान अगर पूरे नहीं तो लगभग समान हैं. आस्था-विवेक और सक्रियता—इन्हें अपना लेने से जीवन का प्रशस्त पथ खुलता है और जैन साहित्य भी सिद्धि के इन विविध सूत्रों को जोड़ पाने का सदैव प्रयत्न करता रहा है.

जैन दर्शन कहता है कि आत्मा और सच्चिदानन्द सत्य है. इसमें अशुद्धि, विकार, दुःखरूपता, अज्ञान और मोह के कारण होती है. जैनदर्शन एक ओर विवेकशक्ति को विकसित करने की बात कहता है तो दूसरी ओर वह रागद्वेष के संस्कारों को नष्ट करने को कहता है. वहाँ अविवेक और मोह ही संसार हैं या उसके कारण हैं.[१]

जैन-साहित्य लोकजीवन को उन्नत और चारित्रशील बनाने वाली नैतिक-शिक्षा का वाङ्मय है. कहने को वह एक विशिष्ट धर्म है लेकिन किसी भी धर्म या देश के लोग उसका पालन कर सकते हैं. अर्थात् उसकी कई मूल मान्यताएँ ऐसी हैं जो सभी के लिए आवश्यक हैं और रहेंगी.

जैन-साहित्य विशाल है. प्राकृत-संस्कृत और देशभाषा-साहित्य के नामकरण की तिथि से लेकर आज तक की गत सभी शताब्दियों में प्रतिष्ठित और लोकमान्य भाषाओं में साहित्य-रचना का श्रेय जैन साहित्यकारों को है. तमिल, तेलगू, कन्नड़, हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगला और राजस्थानी—विभिन्न भारतीय भाषाओं में जैन साहित्य रचा गया है.

जैन-साहित्य के विकास-पथ में अनेक संत साहित्यकारों और आचार्यों का योग मिला है.

'पउमचरिउ' के रचयिता श्री विमलसूरि, 'हरिवंश-पुराण' के आचार्य जिनसेन, 'पाण्डवचरित' के देवप्रभसूरि, 'त्रिशष्ठि-शलाका पुरुष चरित' के जैनाचार्य हेमचन्द्र, 'जम्बूस्वामिचरित' के महाकवि वीर, 'रंभामंजरी' के नयचन्द्र, 'भविस्सयत्त कहा' के धनपाल, अपभ्रंश के वाल्मीकि महाकवि स्वयंभू, 'धूर्ताख्यान' के श्री हरिभद्रसूरि, 'बृहत्कथाकोष' के श्री हरिषेण जैसे अनेक दिग्गज रचनाकारों की सृष्टि का यह विशाल वाङ्मय अपने सुदृढ़ अस्तित्व को स्वतः प्रमाणित कर रहा है.

---

१. जैन दार्शनिक साहित्य का सिंहावलोकन श्रीदलसुख, मालवणिया.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धसेन दिवाकर तथा अन्य—आचार्य सिद्धसेन दिवाकर जैन परम्परा में तर्क-विद्या के प्रणेता और जैन परम्परा के प्रथम संस्कृत कवि के रूप में सम्मानित हैं. नयचन्द्र के सम्बन्ध में स्वयंभू ने कहा है कि उसके काव्य में अमरचन्द्र का लालित्य और श्रीहर्ष की वक्रिमा—दोनों गुण हैं. महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने संस्कृत के भाष्यकारों में श्री प्रभाकर गुप्त को महती प्रतिष्ठा दी है और दर्शन-व्याकरण और काव्य के आचार्य हेमचन्द्र का 'त्रिशष्ठिशलाकापुरुष चरित्र' विश्व-साहित्य का बेजोड़ काव्य माना गया है.[1]

हरिभद्रसूरि के प्राकृत ग्रंथ 'धूर्ताख्यान' के सम्बन्ध में यह मान्यता प्रकट की गई है कि यह ग्रन्थ समुच्चय भारतीय साहित्य में अपने ढंग की मौलिक ग्रंथपद्धति का एक उत्तम उदाहरण है.[2]

अपभ्रंश का गौरव—हिन्दी की जननी अपभ्रंश भाषा के साहित्य में तो सर्वत्र जैन सन्तों का ही साहित्य मिलता है. स्वयंभू, धनपाल, जोइन्दु, मुनि कनकामर शालिभद्र, विजयचन्द्रसूरि, हरिभद्र सूरि, जिनदत्त सूरि, वर्द्धमान सूरि, शालिभद्र सूरि, देवसूरि, विनयचन्द्रसूरि, उद्योतनसूरि, सोमप्रभसूरि, जिनप्रभसूरि और रत्नप्रभसूरि' जैसे अनेक रचनाकारों ने अपभ्रंश भाषा को श्रेष्ठ साहित्य दिया है. जैन रचित अपभ्रंश साहित्य के विभिन्न स्वरूपों में हमें हिन्दी और उसकी सहायक भाषाओं तथा अन्य कई भारतीय भाषाओं के जन्म और विकास की कहानी मिलती है. हिन्दी आज अपभ्रंश की जितनी ऋणी है—जैन साहित्यकारों की भी उतनी ही ऋणी है.

साहित्य की लगभग सभी समकालीन विद्याओं में जैन-साहित्य की रचना हुई हैं. वहाँ यशश्चन्द्र, वारिचन्द्र, मेघप्रभाचार्य रामचन्द्र, देवविजय, यशपाल, निजयपाल और हस्तिमल जैसे नाटककार; पादलिप्त, हरिभद्र, उद्योतनसूरि, जिनेश्वर, देवभद्र, राजशेखर और हेमहंस जैसे कथाकार; चन्द्रप्रभसूरि, हेमतुंग, राजशेखर और जिनप्रभसूरि जैसे निबन्धकार एवं इतिहासकार; ओडयदेव जैसे गद्यकाव्यकार; सोमदेव, हरिश्चन्द्र, अर्हद्दास जैसे चम्पूकार और वीर नन्दि, वादिराज, धनञ्जय, वाग्भट्ट, अभयदेव, और मुनिचन्द्र जैसे महाकाव्यकार बड़ी संख्या में एक साथ मिलते हैं जिन्होंने स्तर और परिमाण—दोनों दृष्टियों से सफल रचनाकारों में अपना स्थान बनाया है.

जैन-साहित्य के आकर्षण अनेक हैं लेकिन प्रस्तुत निबन्ध की मर्यादा में उनकी विस्तृत चर्चा न अपेक्षित है और न समीचीन ही, इसलिए उचित यही होगा कि 'मेवाड़ में रचित जैन साहित्य' का यथा उपलब्ध विवरण प्रस्तुत किया जाय.

जैनाचार्य और मेवाड़

जैनाचार्य सिद्धसेन दिवाकर पहले आचार्य थे जिन्होंने चित्तौड़ में प्रवेश किया.[3] जैन-ग्रन्थों के अनुसार वे यशस्वी भारत-सम्राट् विक्रमादित्य के प्रतिबोधक, प्रगाढ़ पण्डित और महान् दार्शनिक थे.

आचार्य हरिभद्र और चैत्यवासी परम्परा—आठवीं या नवीं शताब्दी के विद्वान आचार्य हरिभद्रसूरि का राजस्थान से, विशेषकर चित्तौड़ से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है. जैन संतों में यह एक ऐसे आचार्य थे जिन्होंने धर्म को मार्ग भटक जाने से बचाया. जैन सन्तों में उन दिनों चैत्यवासियों का बड़ा प्रभाव था. वे चैत्यों या मठों में रहते थे और धीरे-धीरे अनेक आसक्तियों से बंध गये थे. मठों में रहना, देवद्रव्य का उपयोग, रंग-बिरंगे वस्त्र, स्त्रियों के आगे गाना, दो तीन बार भोजन, ताम्बूल व लवंग का सेवन तथा ज्यौनारों में शिष्ट आहार—उनमें मठाधीशों की विकृतियाँ पनपने लगी थी, वे मुहूर्त निकालते थे. निमित्त बतलाते थे, श्रृंगार करते थे, इत्र लगाते थे, क्रय-विक्रय करते थे और चेले बनाने के लिये बच्चों तक को खरीदते थे.[4]

---

१. जैन साहित्य—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी.
२. कथाकोष प्रकरण की भूमिका—मुनि जिनविजय (सिन्धी जैन ग्रन्थमाला—ग्रन्थांक ११)
३. जैन साहित्य और चित्तौड़—अगरचन्द नाहटा.
४. जैन साहित्य और इतिहास—नाथूराम प्रेमी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य हरिभद्र ने इन्हें भ्रष्ट और सत्यपथ का विरोधी घोषित किया और जैनधर्म को नई दिशा देने के इस आन्दोलन को लम्बे समय तक चलाया.

प्रभाचन्द्रसूरि रचित 'प्रभावक चरित्र' के अनुसार वे मेवाड़ के तत्कालीन शासक चितारि के पुरोहित थे. वे जैनागमों में सबसे पहले संस्कृत टीकाकार और जैनेतर ग्रंथों के भी सर्वप्रथम टीकाकार माने गये हैं.

ब्राह्मण कुल में उत्पन्न श्री हरिभद्र सूरि ने चित्तौड़ में ही जन्म लिया और चित्तौड़ ही इनका प्रधान कार्यक्षेत्र रहा. प्राप्त जानकारी के अनुसार इन्होंने १४४४ ग्रंथ बनाये जिनमें से लगभग ८० ग्रंथ प्राप्त हैं.

हरिभद्र का साहित्य—आचार्य हरिभद्र रचित ग्रंथों का परिचय इस प्रकार है—

१. शास्त्रवार्त्तासमुच्चय
२. योगदृष्टिसमुच्चय
३. षड्दर्शन समुच्चय
४. योगशतक
५. योगबिन्दु
६. धर्मबिन्दु
७. अनेकान्तजयपताका
८. अनेकान्तवादप्रकाश
९. वेदबाह्यता निराकरण
१०. संबोधप्रकरण
११. संबोधसप्ततिका
१२. उपदेशपद प्रकरण
१३. विंशतिका प्रकरण
१४. आवश्यक सूत्र बृहद्वृत्ति
१५. अनुयोगद्वार सूत्रवृत्ति
१६. दिग्नागकृत न्यायप्रवेश सूत्र वृत्ति
१७. नन्दीसूत्र लघुवृत्ति
१८. दशवैकालिकवृत्ति
१९. प्रज्ञापना सूत्र प्रदेश व्याख्या
२०. जम्बूद्वीप संग्रहिणी
२१. पंचवस्तुप्रकरण टीका
२२. पंचसूत्र प्रकरण टीका
२३. श्रावकधर्म विधि पंचाशक
२४. दीक्षाविधि पंचाशक
२५. ज्ञानपंचक विवरण
२६. लग्नकुण्डलिका
२७. लोकतत्त्वनिर्णय
२८. अष्टक प्रकरण
२९. दर्शन सप्ततिका
३०. श्रावकप्रज्ञप्ति
३१. ज्ञान चित्रिका
३२. धर्मसंग्रहणी
३३. षोडषक
३४. ललितविस्तरा
३५. कथाकोष
३६. समराइच्च कहा
६७. यशोधर चरित्र
३८. वीरांगद कथा
३९. धूर्ताख्यान
४०. मुनिपतिचरित्र आदि.

हरिभद्रसूरि विरचित ग्रंथों की संख्या प्रतिक्रमण अर्थदीपिका के आधार पर १४४४, "चतुर्दशशत प्रकरण प्रोत्तुंग प्रासाद-सूत्रणैकसूत्रधारैः" इत्यादि पाठ के अनुसार १४०० तथा राजशेखर सूरिकृत चतुर्विंशति प्रबन्ध के आधार पर १४४० मानी जाती है. मुनि जिनविजयजी के कथनानुसार उनके उपलब्ध ग्रंथ २८ हैं जिनमें से २० ग्रंथ छप चुके हैं.

सत्य के अन्वेषी—हरिभद्रसूरि के साहित्य में उनकी उदार धर्मभावना का परिचय मिलता है. वे व्यवस्था या मान्यता के परम्परागत सत्य को पहले अपने विवेक की कसौटी पर कसते थे. जो चला आ रहा है वही सत्य है, यह मान्यता आचार्य हरिभद्र की नहीं थी.

'पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद् वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः॥

'मुझे भगवान् महावीर के प्रति कोई पक्षपात नहीं एवं कपिल आदि महर्षियों के प्रति कोई द्वेष भी नहीं, परन्तु जिनका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वचन युक्तियुक्त होता है वही ग्रहण करने योग्य है.'[१]

आचार्य हरिभद्र की इन प्रगतिशील मान्यताओं ने जैनधर्म के आन्दोलन का बड़ा हित किया और यह सिद्ध है कि उन स्वयं ने विपुल साहित्य की रचना की.

उनका स्वर्गवास वि० सं० ५८५ में लिखा पाया गया है लेकिन मुनि जिनविजय जी ने उनका समय वि० सं० ५५७ से ८२७ का माना है और डा० हर्मन याकोबी ने भी इसी मत का समर्थन किया है.

'समराइच्च कहा' हरिभद्र की अमर कृति है. 'धूर्ताख्यान' को भारतीय साहित्य में अपने ढंग की मौलिक ग्रंथ पद्धति का एक उत्तम उदाहरण माना गया है.

जिनवल्लभसूरि—बारहवीं शताब्दी में आचार्य जिनवल्लभसूरि ने चित्तौड़ में कई वर्ष रहकर विधिमार्ग का प्रचार किया. उनके विधिमार्ग ने चैत्यवासियों को बड़ी शक्तिशाली चुनौती दी. वे छन्द, काव्य, दर्शन और ज्योतिष के विद्वान थे. कवि, साहित्यकार और ग्रन्थकार के रूप में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा है. चित्तौड़ ही जिनवल्लभसूरि के प्रभाव का उद्गम और केन्द्रस्थान बना.

संघपट्टक और धर्मशिक्षा—इन दो रचनाओं को श्री जिनवल्लभसूरि ने स्वप्रतिष्ठित महावीर स्वामी के मंदिर (चित्तौड़) में सं० ११६४ में शिलालेखों में अंकित करवाया.

जिनवल्लभसूरि सं० ११६६ में आचार्य पद को प्राप्त हुये.

चित्तौड़ का गौरव—इतिहास और पुरातत्त्व की दृष्टि से चित्तौड़ तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्र (माध्यमिका) का बड़ा महत्त्व है. पातञ्जलि-कालीन भारत (डा० प्रभुदयाल अग्निहोत्री) में जिस माध्यमिका नगरी का उल्लेख मिलता है वह चित्तौड़ के समीप थी. ई० पू० द्वितीय शताब्दी में मिनाण्डर ने साकेत और माध्यमिका पर आक्रमण किया था. डा० भण्डारकर के मतानुसार पुष्यमित्र ने साकेत और माध्यमिका की विजय के बाद ही पहला अश्वमेध यज्ञ किया. चन्द्रभाषा और सिन्ध के मध्यवर्ती देश का नाम शैव देश था जिसकी राजधानी शिवपुर या शिविपुर थी. शिवियों में कुछ लोग अपना प्रदेश छोड़कर उत्तर पंजाब और राजपूताना में चले आये. एक दूसरी शाखा राजपूताना में चित्तौड़ के पास जा बसी. यहां इनकी राजधानी चेतपुर थी, यह स्थान चित्तौड़ से ११ मील उत्तर में है और यही पातंजलि की माध्यमिका है.

माध्यमिका—माध्यमिका को नगरी नाम से भी जाना जाता है. यह नगरी वही है जिसका उल्लेख 'अरुणदयवनोमाध्यमिकाम्' इत्यादि के रूप में पातञ्जलि के महाभाष्य में मिलता है. यह शिवि जनपद की राजधानी थी. इसी माध्यमिका के नाम पर जैन श्वेताम्बर संप्रदाय के एक मुनि-संघ की पुरातनकाल में एक शाखा प्रसिद्ध हुई जिसका उल्लेख कल्पसूत्र की स्थविरावली में 'मज्झिमा साहा (माध्यमिका शाखा) के रूप में मिलता है. इसी स्थान पर ऐतिहासिक महत्त्व के अनेक प्राचीन सिक्के मिले हैं. किंवदंतियों के अनुसार इस नगरी के भग्नावशेषों की ईंटें महाभारत कालीन बताई जाती हैं.

यह नगरी आज से २००० वर्ष से भी पूर्व के बौद्ध व जैनधर्म के प्रादुर्भाव का इतिहास अपने साथ जोड़े हुये है. शैव, शाक्त और वैष्णव के अतिरिक्त यह स्थान जैनियों और बौद्धों के धर्मप्रचार का भी प्रमुख केन्द्र रहा है.
चित्तौड़ जैनाचार्यों के आचार्यत्व का दीक्षास्थल भी रहा है.

जिनदत्तसूरि

आचार्य जिनवल्लभसूरि के उपरांत उन्हीं के पट्टधर श्री जिनदत्तसूरि का नाम प्रमुख रूप से आता है. इनका कार्यक्षेत्र

---

१. हरिभद्रसूरि—ईश्वरलाल जैन (जैन सत्यप्रकाश).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेवाड़, मारवाड़, वागड़, सिन्ध, दिल्ली और गुजरात रहा. जिनदत्तसूरि व्याकरण, कोष, छन्द, काव्य, अलंकार, नाटक ज्योतिष, वैद्यक और दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित और एक समर्थ साहित्यकार थे.

प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश के इस विद्वान लेखक ने अनेक ग्रन्थों की रचना की.

'गणधर सार्धशतक' उनका एक विख्यात ग्रन्थ है जिसमें प्रसिद्ध गणधरों की प्रशस्तियाँ हैं. इस ग्रन्थ में १५० प्राकृत गाथाएँ है.

श्री जिनदत्तसूरि की निम्न रचनाओं का उल्लेख मिलता है—

१. गणधर सार्धशतक (प्राकृत)
२. संदेह दोहावली
३. चैत्यवंदन कुलकम्
४. सुगुरुपारतंत्र्यस्तव (प्राकृत)
५. उपदेश रसायनम् [अपभ्रंश]
६. चर्चरी [अपभ्रंश]
७. कालस्वरूप कुलकम् [अपभ्रंश]
८. सर्वाधिष्ठायि स्तोत्रयं (प्राकृत)
९. विघ्नविनाशिस्तोत्र (प्राकृत)
१०. विंशिका (संस्कृत)
११. उपदेशकुलकम्
१२. अवस्था कुलकम्
१३. श्रुतस्तव
१४. अध्यात्मगीतानि
१५. उत्सूत्र पदोद्घाटन.[१]

कथित धर्मगुरुओं के विरुद्ध आन्दोलन करके उन्होंने नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा पर बल दिया. वे विख्यात साहित्यसमालोचक मम्मट के समकालीन थे. मम्मट काव्य में रस को प्रधानता देते हैं और जिनदत्तसूरि की रचनाओं में भी भावपक्ष प्रधान है. उनका सृजन स्तुतिपरक भी रहा और औपदेशिक भी.

सोमसुन्दरसूरि—तपागच्छ के प्रभावक और विद्वान आचार्य सोमसुन्दरसूरि का सम्बन्ध मेवाड़ के देलवाड़ा नामक स्थान से रहा है. सन् १४५० से इन्हें उपाध्याय पद प्राप्त हुआ और उन्होंने तत्काल ही देवकुलपाटक (देलवाड़ा) में प्रवेश किया. तब राणा लाखा के मंत्री रामदेव और चूण्डा ने प्रवेशोत्सव करवाया.

आचार्य सोमसुन्दर ने देलवाड़ा में ही 'संतीकरं स्तोत्र' की रचना की जिसका पाठ आज भी जैन समाज में प्रतिदिन किया जाता है. इनके समय में देलवाड़ा में प्रचुर साहित्यसृजन और प्रतिलेखन हुआ.

चित्रकूट (चित्तौड़) और देलवाड़ा के साथ-साथ मेवाड़ के आघाट [आयड़], करहेड़ा [करेड़ा], नागदह [नागदा], केशरिया जी, कुंभलगढ़, मांडलगढ़, बिजौलिया, जावर, उदयपुर, कांकरौली आदि अनेकक्षेत्रों में भी विपुल जैन साहित्य की रचना हुई है.

मेवाड़ का सृजन

१. **शलाका सत्तरी**—जैन आचार्य हेमतिलकसूरि रचित अपभ्रंश भाषा की इस रचना में सत्तर महापुरुषों के जीवनचरीत्र हैं. हेमतिलकसूरि को आचार्य पद सं० १३८२ में प्राप्त हुआ.

२. **मातृकाक्षर चैत्य परिपाटी**—फाल्गुन सु० ९ सं० १४७७ में आचार्य हेमहंस ने इस कृति की रचना की. इसमें अकारादि क्रम से जैन तीर्थों की नामावली प्रस्तुत की गई है. उक्त कृति की एक प्रति मुनि कान्तिसागर जी के संग्रह में देखने को मिली है जिसका लिपिकार भी लेखक स्वयं है.

३. **गुरुगुणषट्त्रिंशिका**—श्री रत्नशेखरसूरि ने सं० १४८५ में जैन गुरुओं पर यह अपभ्रंश का स्तुति काव्य लिखा. मुनि कान्तिसागर जी के संग्रह में जो प्रति मिली उसके लिपिकार भी श्री रत्नशेखरसूरि ही हैं.

१. गणधर सार्धशतक और उनकी बृहद् वृत्ति—मुनि कांतिसागर.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. **चित्रकूट प्रशस्ति**—जिनसुन्दरसूरि के शिष्य श्री चारित्ररत्न गणि ने चित्तौड़ के महावीर-मंदिर की यह प्रशस्ति सं० १४६५ में लिखी. उक्त प्रशस्ति की सं० १५०८ की प्रतिलिपित प्रति भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट पटना में उपलब्ध हैं.

५. **ऐतिहासिक गुरु आवलियां**—जैन मुनि हेमसार ने इसमें आचार्यों का चरित्र चित्रण किया है. हेमसार सं० १४६६ में देलवाड़ा में थे. उक्त कवि की निम्न रचनाओं का भी उल्लेख मिलता है :

[अ] ज्ञान पंचमी चौपाई
[ब] गुरु आवली

उल्लिखित पुस्तक की भी एक ही प्रति मुनि कांतिसागर जी के संग्रह में देखने को मिली है.

६. **वस्तुपाल चरित काव्य** ७. **रत्नशेखर कथा**—उपरोक्त दोनों कृतियों की रचना आचार्य जयचन्द्रसूरि के शिष्य जिनहर्षगणि ने सं० १४६७ में चित्तौड़ में की.

८. **ज्ञान प्रदीप**—चित्तौड़ में सं० १४६७ में विशालराज नामक मुनि ने इस ग्रन्थ की रचना सम्पन्न की.

९. **चित्रकूट-चैत्य-परिपाटी**—विख्यात जैन गद्यकार श्री पाशुचन्द्रसूरि रचित 'चित्रकूट-चैत्य-परिपाटी' में जैनमंदिरों का सुन्दर वर्णन मिलता है.

पाशुचन्द्रसूरि का जन्म सं० १५३७, आचार्यपद सं० १५६५ और स्वर्गारोहण सं० १६१२ का रहा है इसलिये १६ वीं और १७ वीं शताब्दी के संधिकाल की मानी जानी चाहिए.

१०. **विक्रम-खापर चरित्र चौपई**—सं० १५६३ में राजशील नामक कवि ने चित्तौड़ में उक्त कृति की रचना की. यह एक लोककथाकाव्य है. विक्रमादित्य और खापरिया चोर के प्रसिद्ध लोककथानक पर उक्त काव्य आधारित है.

११. **गोराबादल पद्मिनी चौपाई**—प्रमुख जैनाचार्य श्री हेमरत्नसूरि ने बड़ी सादड़ी में सं० १६४५ में उक्त कृति की रचना की. हेमरत्नसूरि का समय सं० १६१६ से सं० १६७३ तक का माना गया है.[1] यह पूर्णियागच्छ के वाचक पद्मराज के शिष्य थे.

कृति में जायसी के पद्मावत से मिलती-जुलती कथा है जिसमें इतिहास और कल्पना का सम्मिश्रण है. प्रधान रस वीर है लेकिन गौण रुप में शृंगार भी समाविष्ट है.

स्वामीधर्म की बड़ाई और पद्मिनी का शीलवर्णन उक्त काव्य की विशेषताएँ हैं.

कवि के अनुसार यह 'लिखमी वर्णन' नामक केवल पहला ही खण्ड है तथापि कथा की दृष्टि से यह अपने आप में पूर्ण काव्य प्रतीत होता है.[2]

---

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० हीरालाल महेश्वरी (पृ० २६६).

२. पद्मिनी की यह कथा काव्यरूप में सर्वप्रथम जायसी के पद्मावत में सं० १५४० में आई. इससे पूर्व भी लोककथा के रूप में यह कथा अत्यधिक प्रचलित रही है.
जायसी के बाद फरिश्ता की 'तवारीख' में जायसी के कथानक से ही मिलती-जुलती कथा मिलती है. नाहटा जी के संग्रह में भी 'गोराबादलकवित्त' नाम की कृति पाये जाने का उल्लेख मिलता है. वि० सं० १६४५ में हेमरत्नसूरि की उपरोक्त रचना मिलती है जो कथा की उसी परम्परा से सम्बद्ध है.
इसके उपरांत भी, सं० १७६० में भागविजय नाम के एक जैन कवि ने इसी कथा का परिवर्धन किया. सं० १६८० में जटमल नाहर की 'गोराबादल चौपई' मिलती है. सं० १७०५-६ में लब्धोदय का 'पद्मिनी चरित' मिलता है जिसका उल्लेख इसी लेख में आगे किया गया है.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य हेमरत्नसूरि की निम्न रचनाओं का भी उल्लेख मिलता है.[1]

१. महीपाल चौपाई
२. अमरकुमार चौपाई
३. सीता चौपाई
४. लीलावती

१२. **श्री पूज्य रत्नसिंह रास**—देवगढ़ के पास स्थित ताल नामक स्थान में शूजी कवि ने इस कृति की रचना की. ग्रन्थ का रचनाकाल सं० १६४८ है.

यह ४४ पदों की एक लघु कृति है जिसमें रत्नसिंह के व्यक्तित्व का चित्रण किया गया है. आचार्य रत्नसिंह लोंकागच्छ के एक प्रमुख आचार्य हुये हैं.

१३. **अञ्जना रास**—जावरपुर[2] [जावर माइन्स] में उक्त रास की रचना सं० १६५२ में कवि नरेन्द्रकीर्ति ने की. यह एक पौराणिक काव्य है जिसमें रामकथा के प्रमुख पात्र हनुमान की माता अञ्जना की कथा है.

१४. **शुकन चौपाई**—इसका रचनाकाल सं० १६६० बताया गया है. श्री जयविजय इसके रचनाकार हैं. गिरिपुर [डूंगरपुर] में राजा सहस्रमल के राज्यकाल में 'शुकन चौपाई' की रचना हुई. राजा सहस्रमल का राज्यकाल सं० १६३३ से १६६३ तक माना गया है.[3]

इसी लेखक ने सं० १६६८ में संग्रहणीमूल नामक भौगोलिक ग्रन्थ की प्रतिलिपि की.

१५. **बच्छराज हंसराज रास**—कोटड़ा में कवि मानचन्द ने सं० १६७५ में इस कृति की रचना की. वच्छराज और हंसराज नामक दोनों भाई इस कृति की कथा के प्रमुख पात्र हैं. यह मानचन्द या मानमुनि जैनाचार्य जिनराजसूरि के शिष्य थे.

१६. **शिवजी आचार्य रास**—श्री धर्मसिंह ने सं० १६९७ में उदयपुर में इस रास की रचना की. यह एक ऐतिहासिक कृति है. मूर्तिपूजा में विश्वास न रखने वाला भी एक पक्ष जैन समाज में है जिनके शिवजी नामक आचार्य हुये हैं. मुनि धर्मसिंह ने इन्हीं शिवजी आचार्य का वर्णन उक्त रास में किया है. 'शिवजी आचार्य रास' का लोंकागच्छ के ऐतिहासिक काव्यों में महत्त्वपूर्ण स्थान है.

१७. **जयकुमार आख्यान**—सत्रहवीं शताब्दी में भट्टारक परम्परा[4] के नरेन्द्रकीर्ति के शिष्य कामराज ने 'जयकुमार आख्यान' की रचना की. संस्कृत का यह ग्रन्थ डूंगरपुर में रचा गया. कामराज की एक और रचना 'त्रिशष्ठि शलाका पुरुषचरित' का भी उल्लेख मिलता है.

१८. **सहस्रफणा पार्श्व जिन स्तवन**—सं० १७०१ में शाहपुरा में कवि विनयशील ने इस स्तवन की रचना की. यह ४५ पदों का लघु स्तुतिकाव्य है.

---

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० हीरालाल महेश्वरी.

२. आज के प्रमुख खनिजकेन्द्र जावर को गत कई वर्षों पूर्व से काफी प्रसिद्धि प्राप्त है. महाराणा लाखा के समय से ही यहाँ शीशा निकाला जाता रहा है. जावर में जैन पुरातत्त्व की विपुल सामग्री पाई जाती है. कई प्राचीन शिलालेखों और प्रतिमालेखों में जावर का उल्लेख मिलता है.

३. डूंगरपुर राज्य का इतिहास—रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा.

४. दिगम्बर संप्रदाय में मुनिपद के बाद भट्टारकों की प्रमुखता थी. भट्टारकों की दो शाखाएं मुख्य हैं (१) उत्तर भारतीय (२) पश्चिम भारतीय.
पश्चिम भारतीय शाखा के पुरस्कर्त्ता भट्टारक सकलकीर्ति हुये हैं. इस परम्परा ने वागड़ और गुजरात के सीमावर्ती प्रदेश में गद्दियाँ स्थापित कीं और भट्टारकों के प्रोत्साहन में विपुल साहित्य की रचना हुई.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. **संयोग बत्तीसी**—सुप्रसिद्ध जैनकवि मानमुनि ने उदयपुर में 'संयोग बत्तीसी' की रचना की. इस एक ही कृति को निम्न चार नामों से जाना जाता है ;

१. मानमंजरी
२. संयोग द्वात्रिंशिका
३. संयोग बत्तीसी
४. मान बत्तीसी

यह मानकवि वही मानसिंह हैं जो 'बिहारी सतसई' के टीकाकार और राजविलास के रचयिता हैं.

मानकवि नाम के एकाधिक कवि राजस्थान में हुये हैं इसलिये कुछ विद्वान सतसई के टीकाकार और राजविलास के रचयिता को एक नहीं मानते. मानकवि को अलंकारशास्त्र का अच्छा ज्ञान था.

संयोग बत्तीसी नायिका-भेद का एक श्रेष्ठ काव्य है. मानमुनि विजयगच्छ के संत थे और विजयगच्छ का उदयपुर में बड़ा प्रभाव रहा है.

२०. **अञ्जनासुन्दरिका रास**—रास के रचनाकार का नाम भुवनकीर्ति है. दिगम्बर और श्वेताम्बर समाज में भुवनकीर्ति नाम के भी एकाधिक कवि मिलते हैं परन्तु 'अञ्जनासुन्दरिका रास' के रचयिता भुवनकीर्ति खरतरगच्छीय जिनरंग सूरि के आज्ञानुवर्ती थे. बीकानेर के मुख्यमंत्री कर्मचन्द्र के वंशज श्री भागचन्द्र के लिये उदयपुर में इस ग्रन्थ की रचना की गई. ग्रन्थ का रचनाकाल सं० १७०६ है. उन दिनों उदयपुर में महाराणा जगतसिंह का शासन था.

उक्त रास में रामकथा के प्रमुख पात्र श्री हनुमान की माता अञ्जना की कथा है, जिस चरित्र को जैन पौराणिक मान्यताओं के अनुरूप ढाला गया है.

२१. **पद्मिनी चरित्र**—सं० १७०७ में कवि लब्धोदय ने उदयपुर में इस कृति की रचना की. लब्धोदय की कवित्व शक्ति को जैनसाहित्य में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त है. वे लगभग ४०-५० वर्षों तक साहित्यसृजन में लगे रहे. वे ६ उल्लेखनीय रासों के रचयिता माने गये हैं. उनका विहार मेवाड़ में अधिक हुआ. पद्मिनी चरित्र की रचना सं० १७०६ में शुरु हुई और चैत्रीपूनम सं० १७०७ को उसकी रचना समाप्त हुई.

उदयपुर, गोगूंदा और धूलेवा ही लब्धोदय की साहित्य-रचना के प्रमुख केन्द्र रहे हैं.

२२. **धन्ना का रास**—कविखेता ने वैराठ (बदनोर के पास) सं० १७३२ में उक्त रास की रचना की. रास में बिहार के राजगृहनगर के सुप्रसिद्ध श्रेष्ठ धन्ना के चरित्र तथा उसकी समृद्धि का वर्णन है. समृद्ध और सम्पन्न व्यक्ति के लिये आज भी धन्ना सेठ की जो उपमा दी जाती है वह यही धन्ना श्रेष्ठी हैं.

वैराठ वैसे जयपुर में है लेकिन उक्त रास में ही एक उल्लेख वैराठ नगर की स्थिति को स्पष्ट कर देता है :

"मेदपाट में जाणिये रे वांको गढ़ वैराठ ।"

अर्थात् यह वैराठ मेदपाट (मेवाड़) का ही है.

२३. **आंतरे का स्तवन**—कवि तेजसिंह ने १७३५ में नांदेस्मां (जिला उदयपुर) में उक्त स्तवन की रचना की. मुनि तेजसिंह लोंकागच्छ के १८ वीं सदी के प्रमुख आचार्य थे. कवि ने कोठारी ठाकुरसी के लिये उक्त स्तवन की रचना की. इनकी अन्य रचनायें भी उपलब्ध हैं जिनमें 'गुरुगुणमालाभास' एक ऐतिहासिक कृति है.

२४. **भीमजी चौपाई**—प्रस्तुत कृति में भीमजी का ऐतिहासिक वर्णन दिया गया है लेकिन प्रति सम्मुख न होने से भीमजी के सम्बन्ध में अधिकृत रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता. भीमजी नाम का कोई आसपुर का शासक अवश्य हुआ है. सं० १७४२ में पुंजपुर (डूंगरपुर) में यह कृति रची गई. कृति में उल्लेख मिलता है कि इसका रचनाकार मुनि कीर्तिसागर सूरि का कोई शिष्य था.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुंजपुर डूंगरपुर के शासक श्री पुँजराज (सं० १६६४-१७१३) द्वारा बसाया गया.

२५. **अनाथी संधि**—प्रसिद्ध जैनतीर्थ ऋषदेव से ८ मील दूर कल्याणपुर नामक स्थान पर कवि क्रम ने सं० १७४५ में उक्त कृति की रचना की. यह मुनि हेम लोकागच्छ के मुनि खेतसी के शिष्य थे. 'अनाथी-संधि में अनाथी नाम के एक जैन मुनि पर लिखा गया चरितकाव्य है.

कल्याणपुर मेवाड़ के इतिहास का एक प्रमुख स्थान है जहाँ पुरातत्त्व की विपुल सामग्री मिलती है.

२६. **इशुकार सिद्ध चौपाई**—इसका रचनाकार भी वही कवि हेम है जिसने **अनाथि संधि** की रचना की. सं० १७४७ में यह कृति उदयपुर में रची गई. यह एक चरितकाव्य है और 'उत्तराध्ययन सूत्र' के आधार पर रचा गया है.

२७. **कक्का बत्तीसी—अक्षर बत्तीसी**—यह वस्तुत: एक ही कृति के दो नाम हैं जिसकी रचना कवि महेश ने सं १७५० में उदयपुर में की. किसी-किसी प्रति में इसके रचयिता का नाम मुनि हिम्मत भी बताया गया है. हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों के १८ वें त्रिवार्षिक विवरण में भी इसका रचनाकार उदय नामक कवि दिया गया है जो संभवत: अन्वेषक की लिपिविषयक भूल ही है. यह एक उपदेशात्मक काव्य है.

२८. **वैरसिंह कुमार चौपाई**—देवगढ़ में मोहन विमल कवि ने सं० १७५८ में इसकी रचना की. देवगढ़ के तत्कालीन शासक कुंवर पृथ्वीसिंह के लिये यह पौराणिक काव्य रचा गया.

२९. **चन्दन मलयागिरि चौपई**—संवत् १७७६ में लास नामक गाँव में केसर कवि ने यह कृति रची. यह एक लोक-काव्य है. इस लोककाव्य की प्रथम कृति भद्रसेन (सत्रहवीं सदी) की है—ऐसा उल्लेख भी मिलता है. यह एक प्रचलित लोकाख्यान है जिसकी सचित्र कृतियाँ भी मिलती हैं.

३०. **ऋषिदत्ता चौपाई**—देवगढ़ में कवि चौथमल ने सं० १८६४ में 'ऋषिदत्ता चौपाई' की रचना की. यह एक पौराणिक काव्य है जो उपदेशमाला के आधार पर रचा गया है.

३१. **स्थानकवासी तेरापंथी मूर्तिपूजकों की चर्चा**—नाथद्वारा में कविराज दीपविजय ने सं० १८७४ में इस कृति की रचना की. इनकी और रचनायें भी मिलती हैं जिनमें **सोहमकुल पट्टावलि रास** मुख्य है.

३२. **केसरियाजी का रास**—इस नाम की और भी स्तवनमूलक रचनायें मिलती हैं. केसरिया जी में सं० १८७७ में श्री तेजविजय ने इस रास की रचना की. सीहविजय भी सं १८८७ में केसरिया जी आये और धूलेवा (ऋषभदेव) में उन्होंने भी **'केसरिया जी का रास'** की रचना की.

३३. **ढालमंजरी और रामरास**—यह एक पौराणिक काव्य है. धनेश्वरसूरि, हेमचन्द्रसूरि आदि आचार्यों द्वारा रचित प्राचीन कृतियों के आधार पर इस रास की रचना की गई. सुज्ञानसागर ने उदयपुर में सं० १८८२ में इस कृति की रचना की.

सत्रहवीं शताब्दी में विजयगच्छीय मुनि केसराज ने भी 'राम यशोरसायन' नामक कृति में रामकथा का विस्तार किया है.

नगरवर्णनात्मक काव्य

भारत के प्राचीन साहित्य में नगर-वर्णनात्मक सैकड़ों उल्लेख मिलते हैं. कथा-साहित्य में भी नगर-रचना-विषयक प्रकरण मिलते हैं. भव्य नगर वर्णन काव्य की महाकाव्योचित गरिमा की भी कसौटी माना गया है.

नगरों के विभिन्न स्थानों पर सर्वांगपूर्ण प्रकाश डालने वाले स्वतंत्र ग्रन्थों में जैनाचार्य श्री जिनप्रभसूरि रचित विविध-तीर्थकल्प का स्थान सर्वोच्च है.[1]

१. नगर वर्णात्मक हिन्दी पद्य संग्रह-सं० मुनि कान्तिसागर.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्रहवीं शताब्दी में पुनः जैनों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ. हिन्दी साहित्य में यह नगर-वर्णन जैन कवियों की मौलिक देन है.

मेवाड़ में निम्न नगरवर्णनात्मक काव्य लिखे गये—

३४. उदयपुर की गजल—कवि खेतल ने सं० १७५७ में 'उदयपुर की गजल' नाम से उदयपुर नाम का पद्यबद्ध वर्णन किया. ७८ छन्दों की इस गजल में उदयपुर के जलाशयों, महलों, बाज़ारों, उद्यानों आदि का इतिवृत्तात्मक सुन्दर वर्णन मिलता है.

३५. चित्तौड़ की गजल—इसके रचयिता भी कवि खेतल ही हैं. वि० सं० १७४६ में चित्तौड़ की गजल की रचना की गई. इसमें चित्तौड़ के किले, जैनमंदिरों, प्रतिमाओं, महलों, आदि के भव्य वर्णन मिलते हैं. यह ५६ छन्दों की कृति है.

इन गजलों में प्रयुक्त प्रमुख छन्द को 'गजल चाल' नाम दिया गया है और संभवतः इसीलिए इनका नामकरण गजल किया गया है.

३६. उदयपुर को छन्द—तपागच्छीय जैनाचार्य जससागर के शिष्य श्री जसवंतसागर ने सं० १७७५-६० के आसपास इस काव्य की रचना की[1] सं० १७७५ में, महाराणा राजसिंह के समय उदयपुर में रहकर जसवंतसागर ने कई ग्रन्थों की रचना की. आपका अधिकतर निवास उदयपुर में ही रहा जान पड़ता है.

'उदयपुर को छन्द' कृति में उदयपुर के किले, नगर, मंदिरों आदि की विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की गई. उदयपुर के अन्य वर्णनों पर भी इस छन्द की छाप है.

१८ वीं से २० वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक उदयपुर पर ६ वर्णनात्मक प्रशस्तियाँ प्राप्त हो चुकी हैं.

३७. मेदपाठ देशाधिप प्रशस्ति वर्णन—कवि हेम रचित यह प्रशस्ति मेवाड़ की तात्कालिक स्थिति का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करती है.

यह लगभग १५ मुद्रित पृष्ठों का काव्य है[2].

हेम नाम के एक और भी चारणकवि हुये हैं. यह चारण हेम महाराज गजसिंह के समय में जोधपुर में हुये.

मात्र इतना ही नहीं, मेवाड़ में विपुल जैन साहित्य की रचना हुई है लेकिन वह सभी अभी प्रकाश में नहीं आ पाई है.

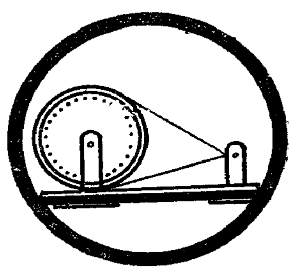

१. जसवंत सागर कृत उदयरपु वर्णन—मुनि कान्तिसागर (मधुमती वर्ष ३-अंक ३)
२. बुद्धिप्रकाश (अप्रेल में जून १६४२).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org